नियमसार। १६१ गाथा।

णाणं परप्पयासं दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव।
अप्पा सपरपयासो होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि।।१६१।।

दर्शन प्रकाशक आत्म का पर का प्रकाशक ज्ञान है।
निज पर प्रकाशक आत्मा, रे यह विरुद्ध विधान है॥१६१॥

टीका : क्या कहते हैं? **यह, आत्मा के स्व-परप्रकाशकपने सम्बन्धी विरोध कथन है।** कोई ऐसा कहे कि आत्मा स्व-पर प्रकाशक है, परन्तु दर्शन से स्व प्रकाशक,

ज्ञान से पर प्रकाशक है – ऐसा कोई कहे तो वह विरोध है। ऐसा नहीं है। समझ में आया? आत्मा स्व-परप्रकाशक और उसके गुण दो, ज्ञान परप्रकाशक, दर्शन स्वप्रकाशक – ऐसा करके आत्मा स्व-परप्रकाशक। यह विरोध है। ऐसी बात में पड़े कहाँ? सूक्ष्म बात है। श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं। श्वेताम्बर के पाठ में है। दर्शन अपने को देखता है, ज्ञान पर को जानता है।

प्रथम तो, आत्मा को स्व-परप्रकाशकपना किस प्रकार है? यह कहते हैं। **आत्मा को स्व-परप्रकाशकपना किस प्रकार है? (उस पर विचार किया जाता है।)** इस पर विचार किया जाता है। '**आत्मा ज्ञानदर्शनादि विशेष गुणों से समृद्ध है;...**' आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द, बल, पुरुषार्थ, प्रभुता आदि अनन्त गुणों से समृद्ध है। अनन्त गुणों से भरपूर प्रभु है। आहाहा! कोई एक गुण दूसरे गुण से नहीं है। सब गुण की समृद्धि है। सब गुणों का एकरूप है।

'**आत्मा ज्ञानदर्शनादि विशेष गुणों से...** अर्थात् खास गुणों से **समृद्ध है;...** भरा पड़ा है। आहाहा! अनन्त गुणों से आत्मा अन्दर भरा पड़ा है। गुण की अनन्त-अनन्त संख्या। सब गुणों से भरपूर है। **उसका ज्ञान शुद्ध आत्मा को प्रकाशित करने में...** उसका ज्ञान शुद्ध आत्मा को प्रकाशित करने में **असमर्थ होने से परप्रकाशक ही है;...** ऐसा कोई माने। ऐसा कोई माने। ऐसा है नहीं। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा का ज्ञान शुद्धात्मा को जाने। आत्मा का ज्ञान आत्मा को जाने, प्रकाशित करे। वह प्रकाशित करने में समर्थ होने से। अपना ज्ञान प्रकाशित करने में ज्ञान असमर्थ है – कितने ही ऐसा कहते हैं। ज्ञान अपना है, वह अपने को जानने में असमर्थ हैं (ऐसा) अभिप्राय है। धर्म के नाम से सूक्ष्म फेरफार, बहुत फेरफार है। बाहर में स्थूलरूप से एक सरीखे दिखें। अन्दर सूक्ष्मता में अन्तर क्या है, यह बहुत अन्तर है। कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान है, वह अपने को जानने में असमर्थ है। आहाहा! ऐसा कोई कहे तथा कहते और मानते हैं अभी। वह मत भी है और मानते भी हैं।

इस प्रकार निरंकुश दर्शन भी... क्या कहा? – कि ज्ञान जैसे अपने को भी जानता है और पर को भी जानता है। अपने को जानने में असमर्थ है; वैसे दर्शन भी अपने को ही देखता है, पर को जानने में (देखने में) असमर्थ है। यह तो चर्चा में आवे, तब खबर पड़े

न। यहाँ किसने विचार किया हो। सम्प्रदाय में ऊपर जो कहता हो, वह मानकर चल निकले। आहाहा! **इस प्रकार...** ज्ञान की तरह। जैसे ज्ञान अपने को नहीं जानकर अकेला पर को ही जानता है; वैसे दर्शन भी केवल अपने को ही देखता है, पर को नहीं देखता। आहाहा! ऐसा कोई कहे, **निरंकुश दर्शन भी केवल अभ्यन्तर में आत्मा को प्रकाशित करता है...** आहाहा! दर्शन अन्तर में आत्मा को देखता है। **(अर्थात् स्वप्रकाशक ही है।) इस विधि से आत्मा स्व-परप्रकाशक है।** इस विधि से आत्मा स्व-पर प्रकाशक है - ऐसा कोई माने तो वह विरुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण से समृद्ध है, तो उसमें ज्ञानगुण है, वह अपने को जानने में असमर्थ है और पर को जानने में समर्थ है। ऐसे दर्शन भी निरंकुश अपने को ही देखे और पर को जानने में (देखने में) असमर्थ है। इस तरह दो गुणों की व्याख्या ऐसी कोई करे तो वह विरुद्ध है। आहाहा! अब ऐसे गहरे विचार में कौन जाए? बाहर का कुछ करना। करना अर्थात् किया कुछ दिखायी दे कि हम कुछ करते हैं। अब यह बात तो अन्दर की है। आहाहा!

अन्तर आत्मा देह के रजकण-रजकण से भिन्न, कर्म के परमाणु से भिन्न और पुण्य-पाप के विकारी भाव से भिन्न तथा अपने आनन्द और ज्ञान-दर्शन गुण से अभिन्न। परन्तु अपने गुण से अभिन्न है, उसमें अज्ञानी भेद डालता है कि ज्ञान अपने को नहीं जानता, ज्ञान अपने को नहीं जानता और दर्शन अपने को देखता है। आहाहा! दर्शन पर को नहीं देखता। ज्ञान अपने को नहीं जानता, दर्शन पर को नहीं देखता। आहाहा! समझ में आया?

समृद्ध आत्मा में दो गुण हैं। आत्मा में एकसाथ दो गुण हैं। ऐसे अनन्त गुण हैं। तथापि अज्ञानी उसका विरोध करता है कि ज्ञान जो है, वह अपनी चीज़ को नहीं जानता, वह पर को देखता है और दर्शन है... आहाहा! वह पर को नहीं देखता। दर्शन अपने को देखता है। एकसाथ रहनेवाले अपने गुण, अपने में समृद्ध, उनका कार्य भी एकसमय में एकसाथ दोनों का कार्य है। एक समय में दोनों गुणों का कार्य एकसाथ है, तथापि दर्शनगुण का कार्य स्व को देखना और ज्ञानगुण का कार्य पर को जानना, ऐसे भेद पाड़ता है। आहाहा! श्वेताम्बर में है। केवली को पहले ज्ञान जाने और फिर दर्शन देखे। आहाहा!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर तो बारह सौ वर्ष से निकला है और यह तो कुन्दकुन्दाचार्य का मत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य का मत यह कहाँ है ? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु : उस समय श्वेताम्बर मत था ?

पूज्य गुरुदेवश्री : था न ! निकल गये थे, श्वेताम्बर। कुन्दकुन्दाचार्य थे, तब सौ वर्ष पहले निकल गये थे। और वह बात यहाँ कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं कि एक आत्मा में अनन्त गुण होने पर भी समृद्धि तो एकसाथ भरी है। एक गुण है, वह पर को जाने और एक गुण स्व को देखे, ऐसा गुण में अन्तर में है - ऐसा माने तो वह विरुद्ध है। समझ में आया ? कैसे विरुद्ध है ? - वह बताते हैं, किस प्रकार विरुद्ध है - यह बताते हैं। आहाहा ! (इस प्रकार वह स्व-परप्रकाशक है।)

इस विधि से आत्मा स्व-पर प्रकाशक है - (ऐसा कहते हैं, उस प्रकार) इस प्रकार हे जड़मति... कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसका अमृतचन्द्राचार्य (पद्मप्रभमलधारिदेव) अर्थ करते हैं। **हे जड़मति...** आहाहा ! तेरी जड़बुद्धि है। ज्ञान अपने को नहीं जानता और दर्शन पर को नहीं देखता तो जड़बुद्धि है। आहाहा ! दोनों गुण अपने हैं और एक गुण अपने को जाने और एक गुण पर को जाने, वह जड़मति है। परन्तु ऐसे विचार में आये भी कब हों ? ऐई.. ! ऐसे सूक्ष्म विचार करके... बड़ा अन्तर है। आत्मा में जितने अभेद गुण हैं। एक गुण का कार्य सर्व गुण का कार्य सरीखा है। फेरफार कुछ है नहीं।

इसलिए यह कहा, इसलिए आचार्य अमृतचन्द्राचार्य ने कहा कि **हे जड़मति प्राथमिक शिष्य!** प्राथमिक शिष्य—शुरुआतवाले, पहले से आनेवाला तू ऐसा कहता है, वह विरुद्ध है। प्राथमिक अर्थात् शुरुआत में तू आया और यह बात तू करता है (तो) जड़ है। ज्ञान पर को ही जाने और स्व को न जाने; दर्शन पर को न देखे और स्व को देखे, वह जड़मति है। आहाहा ! परन्तु यह कौन कहते हैं ? किसलिए कहते हैं ? इसकी खबर कहाँ है ! कुछ खबर थी ? हीरा-माणिक की थी वहाँ। सबको यह तो है न, जिसे जो धन्धा हो। आहाहा !

हमारे यहाँ एक आणंदजी था। पहले नौकर था और बाद में भागीदार हुआ। खुशालभाई निकल गये, जब भाई गुजर गये। मैं दीक्षा लेकर निकला गया। उसे बहुत धारणा। धारणा इस जड़ की। किस भाव में माल आया है, उसमें से अभी कितना भाव चलता है और उसमें से जिस भाव आया, वह माल कितना रहा और कितना बिका ?

मुमुक्षु : सब याद रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमको ऐसा बहुत नहीं था। अपने को तो माल आवे वह.. उसे ऐसा त्रिपट्टी याद था। इस भाव में माल आया था। ऐसा कहे, केसर के डिब्बे (इतने पड़े हैं) उस दिन तो रुपया भार था। अभी महँगा हो गया। रुपये के भाव में। उसके इस भाव डिब्बे आये थे। इतने अभी बिके हैं और अभी इतने बाकी हैं तथा अभी इतना भाव चढ़ गया है। बाबूभाई! एक-एक की तीन-तीन बात याद। ऐसी हजारों (वस्तुओं का) दुकान में माल (होवे)। आहाहा! बस, धुन उठी थी। यह तो एक स्त्री थी, लड़का कोई था नहीं। उसमें दोनों मर गये। बुद्धिशाली था। कुँवरजीभाई की अपेक्षा भी बुद्धिवाला था। अरेरे! मुझे किसी ने कहा नहीं, मुझे किसी ने निवृत्ति लेकर आत्मा का करने को कहा नहीं। - ऐसा अन्त में बोलकर मर गया। देह छूट गयी। भाई! यहाँ तुझे कहा था। मेरे पास आता था तब (कहा था।) तुझे स्त्री (लड़की) नहीं, लड़का नहीं, पत्नी-पति दो हो, लाखों रुपये हैं। आहाहा! अब कब तक ऐसे के ऐसे मजदूरी करनी है। दो घण्टे दुकान में जाए। हिस्सा निकाल डाला हुआ। दो घटे जाए उस कुर्सी में। चल न सके, इसलिए कुर्सी में बैठाकर ले जाए। दो घण्टे जाए। पत्र पढ़े, ऐसा हो, बातें करे, तब चैन आवे। आहाहा! ऐसे ही पूरी दुनिया पड़ी है। जिसमें वस्तु ही है। उसमें एकाकार और दूसरा विचार आता नहीं।

अरे! परन्तु मैं यहाँ से जाऊँगा कहाँ? मैं तो नित्य हूँ। अनादि नित्य अविनाशी पदार्थ हूँ। मैं तो अनादि-अनन्त पदार्थ हूँ, तो यहाँ से जाऊँगा कहाँ? आहाहा! कोई स्थान, कोई क्षेत्र, कोई सम्बन्धी, कैसे अवतरित हुए... विचार भी नहीं।

यहाँ तो यह सूक्ष्म बात लेते हैं। एक आत्मा अनन्त गुण से भरपूर समृद्ध आत्मा। अनन्त गुण से भरा हुआ समृद्ध आत्मा। एक समृद्ध आत्मा में सर्वगुण, तथापि एक गुण ज्ञान पर को जाने और स्व को नहीं तथा दर्शन अपने को देखे और पर को नहीं - ऐसी भी एक मान्यता है। आहाहा!

तो कहते हैं, **हे जड़मति प्राथमिक शिष्य! यदि तू दर्शनशुद्धि के अभाव के कारण...** तुझे दर्शनशुद्धि नहीं है। तुझे समकित नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समकित के अभाव में तुझे यह बला घुस गयी है। कुगुरु ने यह बला डाल दी (और) तुझे

बैठ गयी। इतना विचार नहीं आता कि मैं आत्मा हूँ और मेरे जितने गुण हैं, उन सब गुणों में ताकत इतनी है। ज्ञान में भी स्व-पर जानने की ताकत, दर्शन में भी स्व-पर देखने की ताकत है। दर्शन स्व को देखे और पर को न देखे; ज्ञान पर को जाने और स्व को न देखे (-जाने) - ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! अरे! परन्तु किसी को निवृत्ति नहीं मिलती।

ऐसा लोग नहीं कहते? अभी मरने की फुरसत नहीं है। चिमनभाई! व्यापार करते हों न, व्यापार? बड़ा व्यापार करते हों, फिर कहे - अभी तो मरने का भी समय नहीं है। ऐसी बात, बापू! मरण आयेगा, तब पड़ा रहेगा, हो गया। पैर भी चलेंगे नहीं और कुछ चलेगा नहीं। ऐसा का ऐसा पड़ा रहेगा। मरने की भी फुर्सत नहीं है, ऐसा (कहता है)। आहाहा! बोलने में कुछ धीठाई, उंधाई भी कितनी! अरेरे! मैं क्या बोलता हूँ? क्या कहता हूँ? यह मेरे लिये क्या बोलता हूँ? मरने की भी फुर्सत नहीं, इतना सब हमारे काम है। मैं इतना अधिक कामवाला हूँ कि मुझे मरने की भी फुर्सत नहीं है। आहाहा! मरने का समय आयेगा तो बैठा होगा और फू... हो जाएगा। आहाहा!

कहा था न यह? कौन सा गाँव कहा? मलकापुर। मलकापुर में एक स्वरूपचन्द (मुमुक्षु है)। छोटी उम्र का था। अविवाहित था, तभी से दस-दस हजार का कपड़े का व्यापार। कपड़े की दुकान में दस हजार का व्यापार। छोटी उम्र, अविवाहित। हम वहाँ गये थे। उसे मोक्षमार्गप्रकाशक पूरा कण्ठस्थ है। उसने विवाह किया और अभी तो बड़ा व्यापार है। उसका मित्र था और दोनों व्यक्ति बातें करते थे। यों ही, कुछ नहीं था, बैठे (थे) २८ वर्ष की उम्र का था, स्वयं बातें करता था, एक-आधे मिनिट ऐसे देखा.. फू.. इतना जहाँ हुआ, वहाँ मर गया, बैठे-बैठे, कुछ नहीं, रोग नहीं। आहाहा! यह क्या हुआ? फू.. हुआ और ढुल गया। ऐसे देखूँ वहाँ तो हो गया, मुर्दा। देह की स्थिति पूरी होने के लिये अमुक राह, राह देखनी पड़े! आहाहा! एक समय में एकदम देह पलट जाती है। उसमें यदि तूने आत्मा का कुछ नहीं किया तो भटकने के मार्ग में हैं। आहाहा! भटकना अर्थात् परिभ्रमण।

यहाँ यह कहते हैं, **हे जड़मति प्राथमिक शिष्य! यदि तू दर्शनशुद्धि के अभाव के कारण...** तुझे समकित नहीं है। तुझे दर्शनशुद्धि का अभाव है, इसलिए ऐसा तू मानता है। **अभाव के कारण मानता हो, तो वास्तव में तुझसे अन्य कोई पुरुष जड़ (मूर्ख) नहीं है।**

आहाहा! ऐसा तू मानता होवे तो वास्तव में तुझसे अन्य कोई पुरुष मूर्ख नहीं है। आहाहा! भगवान अन्दर चैतन्यप्रकाश और दर्शनप्रकाश की मूर्ति है। भले दर्शन भेद नहीं पाड़ता। इससे.. दर्शन भेद नहीं पाड़ता न, इससे ऐसा कहते हैं कि स्व को देखता है और ज्ञान भेद पाड़कर देखता है, इसलिए पर बहुत हैं और बहुत हैं, इसलिए (जानता) देखता है। ज्ञान सबको जानता है, इसलिए ऐसे जानता है। दर्शन तो अभेद है; इसलिए एक को (देखता) जानता है। **हे जड़मति प्राथमिक शिष्य! यदि तू दर्शनशुद्धि के अभाव के कारण...** मूर्ख है। आहाहा! ऐसा करोड़ोंपति होवे तो मूर्ख! दुनिया में होशियार कहलाता हो, नात में प्रमुख हो, संघ का सेठ हो। परन्तु विपरीत मान्यता होवे तो मूर्ख है, कहते हैं। विपरीत श्रद्धा... आहाहा! **दर्शनशुद्धि के अभाव के कारण मानता हो, तो वास्तव में तुझसे अन्य कोई पुरुष जड़ (मूर्ख) नहीं है।** आहाहा!

इसलिए अविरुद्ध ऐसी स्याद्वादविद्यारूपी देवी... आहाहा! **इसलिए अविरुद्ध...** तू मानता है, उससे विरुद्ध, **अविरुद्ध ऐसी स्याद्वादविद्यारूपी देवी सज्जनों द्वारा सम्यक् प्रकार से निरन्तर आराधना करने योग्य है।** स्याद्वाद-कथंचित् - किस अपेक्षा से कहा है, वह जानकर आराधना करने में ध्यान रखना। है? **निरन्तर आराधना करने योग्य है।** किस अपेक्षा से है? और किस अपेक्षा से निषेध है? व्यवहार की बात ऐसी आवे कि व्यवहार, साधन; निश्चय, साध्य। वह पकड़ता है कि देखो! साधन है। परन्तु किस अपेक्षा से कहा है? साधन का निषेध किया है, वह साधन होता ही नहीं। स्वयं स्वतन्त्र है। अपना साधन तो अपना गुण है। अपने में 'करण' नाम का गुण है। वह स्वयं अपने से अपना साधन साधता है। उसके साधन में दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं। आहाहा!

ऐसा न मानकर **वहाँ (स्याद्वादमत में), एकान्त से ज्ञान को परप्रकाशकपना ही नहीं है;...** देखो! तू एकान्त से ऐसा कहे कि ज्ञान पर को ही जानता है, तो वैसा एकान्त नहीं है। आहाहा! है? शुद्धात्मा को नहीं (जानता) देखता। **एकान्त से ज्ञान को परप्रकाशकपना ही नहीं है;...** ऐसा तू एकान्त से माने तो मिथ्या है। **स्याद्वादमत में दर्शन भी केवल शुद्धात्मा को ही नहीं देखता...** आहाहा! स्याद्वाद अपेक्षा मत से अकेला दर्शन अपने को देखे (- ऐसा नहीं कहता)।

ऐसा होने का कारण क्या? - कि ज्ञान में सब जानने की शक्ति है। दर्शन में भेद

पाड़े बिना अकेली शक्ति अभेद। दर्शन में अभेद है और ज्ञान में सब भेद पाड़ता है। इसमें उसे भ्रम पड़ गया। दर्शन जब एक ही देखता है तो पोताने को देखता है, और ज्ञान सर्व को जानता है तो सर्व को जानने में रुके, वह अपने को नहीं जानता। आहाहा! समझ में आया? लॉजिक से-न्याय से समझना चाहिए। आहाहा! निवृत्ति कहाँ है? निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा!

स्याद्वादमत में दर्शन भी केवल शुद्धात्मा को ही नहीं देखता (अर्थात् मात्र स्वप्रकाशक ही नहीं है)। दर्शन मात्र स्वप्रकाशक ही नहीं। यह कौन सा दर्शन? समकित दर्शन या दर्शन उपयोग? दर्शनोपयोग की बात चलती है। समकित नहीं। दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग - दो उपयोग की बात चलती है। दर्शन-श्रद्धा और ज्ञान जानना, उसकी यहाँ बात चलती है। आहाहा! यह तो पहले कहा कि दर्शन स्व को देखता है अभेद। उसका अभेद देखने का स्वभाव है, इसलिए ऐसा कहा; और ज्ञान का जानने का स्वभाव होने से सब जाने, ऐसा कहा तो तू दर्शनशुद्धि रहित है, समकित रहित है, जड़मति है, मूर्ख है। यह सम्यग्दर्शनरहित तो कहा। यह तो देखना और जानना उपयोग की बात है। आहा..!

आत्मा दर्शन, ज्ञान आदि अनेक धर्मों का आधार है। आहाहा! **(वहाँ) व्यवहारपक्ष से भी ज्ञान केवल परप्रकाशक हो तो,...** व्यवहार से अकेला परप्रकाशक होवे तो **सदा बाह्यस्थितपने के कारण,...** ज्ञान तो बाहर में रहा। आहाहा! ज्ञान बाहर को जाने तो बाहर में ज्ञान रहा, अन्दर जानने का अवकाश रहा नहीं। आहाहा! बात है बारीक। सूक्ष्म बात है। क्या सूक्ष्म है? - कि शास्त्र में दर्शन की व्याख्या (ऐसी है कि) यह ज्ञान है, यह आनन्द है - ऐसा भेद नहीं डालता। दर्शन तो अभेद है। उसका विषय अभेद है और ज्ञान का विषय भेद है। प्रत्येक को भिन्न-भिन्न जानता है। ऐसी भ्रमणा में वह (अन्यमति) पड़ गया कि दर्शन जब अभेद ही है तो एक आत्मा को देखे। ज्ञान भेद (स्वरूप) है तो (सर्व को जाने)। दर्शन एक आत्मा को देखे तो ज्ञान सर्व को (जाने) देखे। ऐसे साधारण बात है, परन्तु ऐसे सूक्ष्म है। गुणभेद का कार्य भिन्न-भिन्न है, तथापि है अपने सम्बन्ध में। दोनों गुणों में अपनी समृद्धि और अपनी ऋद्धि है। इस गुण में ज्ञान की ऋद्धि पर की, दर्शन की ऋद्धि स्व की - ऐसा नहीं। आहाहा!

आत्मा दर्शन, ज्ञान आदि अनेक धर्मों का आधार है। (वहाँ) व्यवहारपक्ष से भी

ज्ञान केवल परप्रकाशक हो तो,... आहाहा! ज्ञान को व्यवहार से ऐसा कहो कि व्यवहार से परप्रकाशक है। **सदा बाह्यस्थितपने के कारण,...** ज्ञान तो बाह्यस्थित रहा। अपने को जानने में रहा नहीं। आहाहा! ज्ञान को **सदा बाह्यस्थितपने के कारण, (ज्ञान को) आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा...** आहाहा! ज्ञान जब सर्व को जाने तो अपने साथ सम्बन्ध रहा नहीं, सबके साथ सम्बन्ध रहा। आहाहा! लॉजिक से-न्याय से बात की है। है अन्दर का विषय। बहुत बड़ा अन्तर है। दर्शन अभेद और ज्ञान भेद। इसलिए एक साथ मानना, दर्शन एक ही स्व को देखे और ज्ञान एक ही पर को - सर्व को जाने, सर्व को जाने - ऐसा है नहीं। आहाहा!

केवल परप्रकाशक हो तो, सदा बाह्यस्थितपने के कारण, (ज्ञान को) आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा... ज्ञान पर को ही जाने तो अपने को जानने में रहता नहीं। आहाहा! ज्ञान पर को ही जाने, ऐसा (तू कहे), ज्ञान सब जाने... सब जाने... सब जाने.. ऐसा कहा तो तू ऐसा ले ले कि सर्व को जाने और अपने को न जाने - ऐसा तू माने तो तू जड़बुद्धि है। तेरी मूर्खबुद्धि है। आहाहा! आचार्य ने कहा है न, जड़बुद्धि। दर्शनबुद्धि से रहित, श्रद्धा से भिन्न है। भिन्न तेरी जड़बुद्धि है। आहाहा! इतना अन्तर है तो भी जड़बुद्धि कहा। साधारण को ऐसा लगे, इसमें क्या है? ज्ञान का स्वभाव तो बहुत जानने का है और दर्शन का स्वभाव बिल्कुल जानने का नहीं है। मैं दर्शन हूँ और यह ज्ञान है, ऐसा भेद जानने की भी ताकत नहीं है। आहाहा! दर्शन में तो सबको एकरूप मानता है (और) ज्ञान सबको भिन्न-भिन्न जानता है। दो गुण के स्वभाव भिन्न होने पर भी एक साथ एक समय में रहते हैं और दोनों दोनों को जानते हैं। दर्शन अपने को भी देखता है, पर को भी देखता है; ज्ञान पर को भी देखता है और अपने को भी जानता है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि यह पुस्तक मैंने मेरी (भावना) के लिये बनायी है। इसमें गुण में कोई अन्तर डाले तो पूरा दृष्टि भेद हो जाता है। ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा... क्या कहा? ज्ञान है, वह पर को जाने तो ज्ञान का सम्बन्ध पर के साथ रहा, अपने साथ तो रहा नहीं, तो आत्मा का ज्ञान तो रहा नहीं। **(इसलिए) आत्मप्रतिपत्ति के अभाव के कारण...** इस कारण से—आत्मा के ज्ञान के अभाव के कारण से। ज्ञान अपने को नहीं जाने, क्योंकि ज्ञान में बहुत जानने की शक्ति है

तो सर्व को जाने और अपने को न जाने। अपने को न जाने, तब तो अपना अज्ञान हुआ। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ भगवान तीर्थंकर केवली परमात्मा की सूक्ष्म बातें हैं, बापू! यह कोई धर्म कथा-वार्ता कहीं साधारण नहीं है। आहाहा! थोड़ा भी अन्तर पड़ा तो जड़बुद्धि-मूर्ख है। आहाहा!

तू एक आत्मा, तुझसे अनन्त पदार्थ अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! द्रव्य से भिन्न, क्षेत्र से भिन्न, काल से भिन्न, भाव से भिन्न है। उन्हें अपना मानना, यह महामिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जहाँ अपने दो गुणों में अन्तर माने तो मिथ्यादृष्टि जड़ कहा। आहाहा! तो यह आत्मा अनन्त परपदार्थों को अपना जाने, अपने हैं - ऐसा जाने, वह मूर्ख है। आहाहा! यह अँगुली अपनी नहीं है। कहते हैं न कि मेरा शरीर पतला है, मेरा शरीर दलदार है। मेरा शरीर! बोलने में भी भान कहाँ है? बोलने के लिये बोलता हूँ या अभिप्राय में एकत्व से बोलता हूँ - इसकी भी खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **आत्मप्रतिपत्ति के अभाव के कारण...** जब आत्मा का ज्ञान पर को जाने और अपने को न जाने तो आत्मा के ज्ञान के अभाव के कारण **सर्वगतपना (भी) नहीं बनेगा।** सर्व को जाननेवाला नहीं रहेगा। तूने ऐसा कहा कि ज्ञान सर्व को जानता है और अपने को नहीं जानता। यदि अपने को नहीं जानता तो सर्व को कहाँ से जाने? आहाहा! ज्ञान सर्व को जानता है - ऐसा तूने कहा, सर्व को जाने तो अपने साथ ज्ञान का सम्बन्ध तो रहा नहीं। आत्मा ज्ञानरहित हो गया। आहाहा! न्याय से-लॉजिक से बात है, भाई! बनियों के व्यापारी की तरह, जैसे-तैसे गड़बड़ करे, ऐसा यहाँ नहीं है। यहाँ तो जरा अन्तर पड़े तो बड़ा अन्तर (पड़ जाता है)। आहाहा!

सर्वज्ञ वीतराग मस्तक पर है, सिर पर भगवान है। आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सर्वज्ञदेव परमेश्वर (मस्तक पर बिराजते हैं)। आहाहा! धर्मी ऐसा मानता है कि परमेश्वर मेरे सिर पर हैं। आहाहा! वे परमेश्वर कोई भी बात करते हैं, वह सब बात मुझे यथार्थ बैठी है। कहीं शंका को स्थान नहीं है। आहाहा!

रात्रि में कहा न? मिश्री की डली। ओहोहो! सब परमाणु एकरस हो गये हैं। मिश्री में सब एकरस (हो गये हैं)। प्रभु इनकार करते हैं कि एक परमाणु ने दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं किया है। आहाहा! यह बात वीतराग के अतिरिक्त कौन कहे? मिश्री की डली,

मिश्री। एकरस सब परमाणु। नहीं, नहीं; एकरस हुए ही नहीं। प्रत्येक परमाणु उस स्कन्ध में... (ऐसा) पाठ है। (गाथा) ८७ में पाठ है। स्कन्ध में भी परमाणु अपना भिन्न काम करता है, ऐसा पाठ है। आहाहा! पंचास्तिकाय में। परमाणु इस स्कन्ध-पिण्ड में रहे तो भी अपना काम अपने से भिन्न करता है। आहाहा! स्कन्ध में-पिण्ड में रहकर भी अपना काम भिन्न करता है। आहाहा! तो यह मिश्री भिन्न हुई। भेद! भेद! भेदाभ्यास का रात्रि को कहा था। भेद समझाते हुए। भेद समझे न! वह तो स्कन्ध पृथक् पड़ता है और एकत्रित होता है, ऐसा बताते हैं। परमाणु.. हो जाता है और वह परमाणु, परमाणु से भिन्न हो जाता है, ऐसी बात नहीं है। वह तो पूरे परमाणुओं का जो स्कन्ध है, उसमें कितने ही स्कन्ध आते हैं और कितने ही जाते हैं। भेद समझाते हैं। आहाहा! रात्रि को चेतन ने प्रश्न किया है था न। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि व्यवहारनय से जब तू ऐसा कहता है कि **ज्ञान केवल परप्रकाशक हो तो, सदा बाह्यस्थितपने के कारण, (ज्ञान को) आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा और (इसलिए) आत्मप्रतिपत्ति के अभाव के कारण सर्वगतपना (भी) नहीं बनेगा।** आहाहा! है? ज्ञान बाह्य स्थित है, ज्ञान बाहर पर को—सर्व को जाने तो आत्मा सर्वज्ञ रहा नहीं। आत्मा ज्ञानस्वरूप रहा नहीं। आहाहा! आत्मा का ज्ञान बाह्य को जाने, दर्शन अपने को देखे तो ज्ञान का सम्बन्ध बाह्य के साथ रहा, आत्मा के साथ रहा नहीं तो सर्वज्ञपना रहा नहीं। आहाहा! कठिन बात है, परन्तु भाषा तो सादी आती है। आहा!

इस कारण से, यह ज्ञान होगा ही नहीं (अर्थात् ज्ञान का अस्तित्व ही नहीं होगा),... क्या कहते हैं? - कि ज्ञान परपदार्थ के साथ सम्बन्ध रखे और आत्मा के साथ न रखे तो वह ज्ञान ही रहा नहीं, ज्ञान की अस्ति रही नहीं, ज्ञान की मौजूदगी रही नहीं। समझ में आया? ज्ञान पर को (जाने) देखे। सर्व को देखने की ताकत है, भेद है इसलिए। परन्तु स्व को न (जाने) देखे तो आत्मा और ज्ञान दो रहे नहीं, तो आत्मा सर्वज्ञ रहा नहीं। आहाहा! ज्ञान का तो सर्व के साथ सम्बन्ध हुआ। आत्मा को सर्वज्ञ नहीं हो सकता। ज्ञान अकेला रहा तो आत्मा सर्वज्ञ नहीं हो सकता। ज्ञान पर को जाने और अपने को नहीं जाने तो वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म कब पढ़ा था? चिमनभाई! आहाहा! यह वीतरागमार्ग केवलज्ञान से प्रत्यक्ष। तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष हुए हैं। भगवान

महाविदेह में प्रत्यक्ष विराजते हैं। उन परमात्मा के ज्ञान को पर के साथ सम्बन्ध जोड़े तो ज्ञानरहित आत्मा होकर आत्मा सर्वज्ञ नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्वज्ञ नहीं रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर ज्ञान ही नहीं रहा। ज्ञान उसको जानता है, अपने को नहीं जानता तो स्वयं तो सर्वज्ञ रहा नहीं। आहाहा! स्वयं के लिए अन्ध रहा। पर के लिये सूझता रहा, उसमें सर्वज्ञपना कहाँ आया? सर्वज्ञपना तो सब जाने, वह सर्वज्ञ। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग है। यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वीतराग कहते हैं, इसलिए ऐसा कुछ नहीं। वीतरागता तो जैसा स्वरूप है, वैसा जानने में आया, ऐसा कहने में आया। यह कहीं नयी रचना बनायी है कि इस जगत में पदार्थ कुछ है और नयी रचना की है - ऐसा है? आहाहा! यह तो त्रिलोकनाथ, सर्वज्ञपना सर्व को जानने की ताकत थी तो सर्व को जान लिया, सर्व को जान लिया तो सर्वज्ञ हो गये। यह पर का ज्ञान हुआ, उसे सम्बन्ध कहो और ज्ञान में सब जानने की शक्ति है, तो पर के साथ सम्बन्ध रखो और अपने साथ का सम्बन्ध छोड़ दो, सर्व को जानने की शक्ति है तो अपने को छोड़ दो तो वह सर्वज्ञ छूट गया। आहाहा! ओहोहो! बात इतनी सूक्ष्म। आचार्यों.. आहाहा!

ज्ञानगुण की सामर्थ्यता। पर अनन्त जाने तो भी अपने प्रदेश में अपने को जाने बिना रहे नहीं। अपने को जाननेपूर्वक पर को जाने। आहाहा! ज्ञान सर्व को-अनन्त को जानता है, इसलिए ज्ञान अपने प्रदेशों से च्युत हो गया, हट गया और ज्ञान बिना आत्मा रहा (-ऐसा माने तो) तू जड़ है। आहाहा! आत्मा के साथ वह ज्ञान सम्बनध रखता है। पर को जानने पर भी आत्मा के साथ सम्बन्ध रखता है। आत्मा को भी जानता है। ज्ञान आत्मा को भी जानता है और पर को भी जानता है। तू कहे - पर को जानता है और स्व को नहीं (जानता) देखता, और दर्शन स्व को देखता है, पर को नहीं देखता। दर्शन अभेद है न? इसलिए एक ही देखे - स्व देखे। पर को नहीं। आहाहा! गम्भीरता भरी है। गुण की-शक्ति की गम्भीरता से बात है। आहाहा!

सर्वगतपना (भी) नहीं बनेगा। इस कारण से, यह ज्ञान होगा ही नहीं... आहाहा! एक सर्वगतपना नहीं बने तो वह ज्ञान भी नहीं रहे। आहाहा! क्योंकि ज्ञान है, वह तो सर्व को जानता है। जाने, जाने उसमें भेद क्या? ज्ञान जानता है। बस, एक ही। तीन काल-तीन

लोक में नजर किये बिना, उपयोग दिये बिना, अपने में उपयोग रखकर सर्व को जानता है। नहीं तो वह ज्ञान भी रहा नहीं, तो सर्वा रहा नहीं, वह तो जड़ हुआ। ज्ञान पर के साथ सम्बन्ध रखे और अपने साथ सम्बन्ध न रखे तो वह जड़ है। परन्तु यह विचार कहाँ किया है ? ज्ञान और दर्शन में क्या अन्तर है ? क्या है ? आहाहा ! जय भगवान ! भगवान कहे, उसे सच्चा मानो। आहाहा ! दूसरा तर्क करोगे तो उसका मिथ्या पड़ेगा। निर्णय तो तूने किया नहीं। अभिप्राय में मिलान करके अभिप्राय में तुलना की नहीं। दूसरा तुलना करेगा तो तेरी शक्ति हट जाएगी। तेरी श्रद्धा रहेगी नहीं। आहाहा ! स्वयं से निर्णय पक्का किया हो तो इन्द्र ऊपर से उतरे, तो भी नहीं (माने), वस्तु ऐसी है। जो भगवान ने कही, वैसी मुझे बैठी है। इस बात में फेरफार नहीं है। आहाहा !

यह तो थोड़ी-थोड़ी बात में फेरफार हो जाता है। आहाहा ! यह देखो न, हमारे कुँवरजीभाई का परिवार मुसलमान को माने। हैदरशाह। है न हैदरशाह ? इस ओर मन्दिर है। यह पालीताणा का हिन्दू का भैरवनाथ। इस ओर भैरवनाथ का मन्दिर है और इस ओर हैदरशाह का है। वह हैदरशाह बनिया दशाश्रीमाली। फकीर आया होगा। इतना उसने कहा कि हमारे यहाँ अभी आहार नहीं है। तो यह कहे नहीं-नहीं जाओ, जाओ। आहार होगा। उसे कहीं से परोसा आया हुआ था। परोसा आया था, इसलिए.. ओहो ! फकीरबाबा ऐसा जानते हैं ! यह मान्यता हो गयी थी। परोसा आया था और माल था। और यह कहे, हमारे यहाँ अभी कुछ है नहीं। क्या... माल है देख-देख होगा। परोसा आया हुआ देखकर, आहा ! फकीरबाबा भारी जोरदार। उसने मान्यता की। उन्हें माननेवाले बहुत सब हैं। आहाहा ! अब उन लोगों ने छोड़ दिया। दुकानवाले लड़के हैं, वे अब नहीं मानते। दूसरे कुटुम्ब के कुटुम्ब माननेवाले हैं। आहाहा ! फकीर को माने। आहाहा !

यहाँ कहते हैं गुण-फेर को माने तो मिथ्यादृष्टि है। जो गुण जिसके स्वभाववाला है, वैसा नहीं मानकर, ज्ञान अकेले पर को जानता है - ऐसा मानना; ज्ञान का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है - ऐसा नहीं माना; और दर्शन का स्वभाव अकेले स्व को देखता है - ऐसा माना तो ऐसा भी नहीं है। दर्शन में भी स्व-परप्रकाशक प्रतीत करने की श्रद्धा है, स्व-पर दोनों है। स्व-पर दोनों हैं - ऐसा दर्शन उपयोग करने की शक्ति है। आहाहा ! ऐसी सिरपच्ची कौन करे ? यह तो दया पालो, व्रत पालो, मरकर जाए फिर चार गति में भटकने। आहाहा ! प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई ! आहा ! सर्वज्ञ भगवान के अतिरिक्त

कहीं मिलान नहीं खाता। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान ने ऐसा कहा है कि एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर साधु माने तो माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। अरे! प्रभु! यह तो पूरी दुनिया कपड़े पहनकर सबको साधु माने। अन्यमति, वैष्णव, स्वामीनारायण। यहाँ तो यह (कहा) कि वस्त्र पहिनकर साधु माने, वह मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी है।

मुमुक्षु : परिग्रह का नियम लिया और परिग्रह रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने परिग्रह माना नहीं। वस्त्र पहिने, सिर पर पगड़ी पहिने। स्वामीनारायण के बाबा सिर पर पगड़ी (पहिनते हैं)। यहाँ परमात्मा कहते हैं कि एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर हम साधु हैं (-ऐसा) माने, मनावे, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! इतना अधिक अन्तर। यह तो यहाँ गुण में अन्तर मानता है। ज्ञान होता ही नहीं। ज्ञान का अस्तित्व ही नहीं रहता। जब ज्ञान को पर को जाननेवाला कहा और ज्ञान को आत्मा को जाननेवाला नहीं कहा तो आत्मा के साथ ज्ञान का सम्बन्ध रहा नहीं, तो ज्ञान का अस्तित्व रहा नहीं। आत्मा बिना ज्ञान रहे कहाँ? आहाहा! यह विषय सूक्ष्म है।

मृगतृष्णा के जल की भाँति आभासमात्र ही होगा। जैसे मृगतृष्णा। जल बिना जल जैसा दिखायी दे। उसे क्या कहते हैं? मृगजल जल-मृगजल का पानी दिखता है। मृग दौड़कर जाता है, वहाँ खड़ा रहे तो कुछ नहीं मिलता। इस प्रकार कहते हैं कि अज्ञानी इस तरह गुणधर्म का भेद मानेगा, वह मृगतृष्णा जैसी उसकी मान्यता है। आहाहा! है? **मृगतृष्णा के जल की भाँति आभासमात्र ही होगा।** ज्ञान तो आभासमात्र रहा। अपने को न जाने, वहाँ ज्ञान कहाँ रहा? पर को जाने और अपने को न जाने... आहाहा!

इसी प्रकार दर्शनपक्ष से भी,... दर्शन पक्ष में **दर्शन केवल अभ्यन्तरप्रतिपत्ति का ही कारण नहीं है,...** ऐसे दर्शनोपयोग अकेले आत्मा को ही देखे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **कारण नहीं है, (सर्व प्रकाशन का कारण है);...** दर्शन भी अपने को और पर को सर्व को प्रकाशन का कारण है। दर्शन अपने आत्मा को भी देखता है और वह आत्मा सर्व पदार्थ को भी देखता है। भेद नहीं करता। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें। इसकी अपेक्षा तो वह दया पालो, व्रत करना और जिन्दगी नाश कर डालना। हो गया जाओ। आहाहा! चले जाना चौरासी के अवतार में।

यहाँ तो कसौटी से सत्य का निर्णय करना और सत्य का निर्णय होने पर अपने में

परीक्षा प्रधान हुई तो दूसरा कोई इससे विरुद्ध कहे तो माने नहीं, तो इसने माना कहलाये। ऐसे कोई सम्प्रदाय में परीक्षा किये बिना मान ले 'अपरीक्षक दीठे न सिद्धि होई।' यदि परीक्षा किये बिना माने तो वह सिद्धि नहीं है। ऐसा पाठ है। दूसरा कोई मिलेगा, वह तुझे कहेगा तो उसका भी सत्य मानेगा। एक भी निर्णय तो है नहीं। आहाहा!

दर्शन केवल अभ्यन्तरप्रतिपत्ति का ही कारण नहीं है,... क्या कहा ? ज्ञान केवल पर को ही जाननेवाला नहीं हद्दै। वह आत्मा के साथ सम्बन्ध.. ऐसे दर्शन अकेले अपने को देखे, ऐसा नहीं है। दर्शन भी... आहाहा! **दर्शन केवल अभ्यन्तरप्रतिपत्ति का ही कारण नहीं है, (सर्व प्रकाशन का कारण है); (क्योंकि) चक्षु सदैव सर्व को देखता है,...** चक्षुदर्शन है, वह सदा-सदैव सर्व को देखता है। सदा-सदैव-सर्व को देखता है। आहाहा! यह दृष्टान्त लिया। **अपने अभ्यन्तर में स्थित कनीनिका को नहीं देखता...** अपनी बारीक कणिका है, उसे नहीं देखता और पर को देखता है। बारीक कणिका नहीं देखता। ऐसा कहते हैं कि अपने को ही देखता है और पर को नहीं। तो बारीक कणिका देखता नहीं और दूसरे सबको देखता है। आँख सबको देखे और बारीक कणिका को देखती नहीं। आहाहा!

चक्षु सदैव सर्व को देखता है,... आहाहा! **अपने अभ्यन्तर में स्थित कनीनिका को नहीं देखता (इसलिए चक्षु की बात से ऐसा समझ में आता है कि दर्शन अभ्यन्तर को देखे और बाह्यस्थित पदार्थों को न देखे, ऐसा कोई नियम घटित नहीं होता)। इससे, ज्ञान और दर्शन को (दोनों को) स्व-परप्रकाशकपना अविरुद्ध ही है। इसलिए (इस प्रकार) ज्ञानदर्शनलक्षणवाला...** ज्ञान-दर्शन-लक्षणवाला। यदि एक ही लक्षण कहो तो दो लक्षण नहीं रहते। **ज्ञानदर्शनलक्षणवाला आत्मा स्व-परप्रकाशक है।** ऐसा निर्णय करके, समझकर, न्याय से तुलना करके मानना चाहिए।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)